

भारतीय साहित्यों के समन्वय में आचार्य यार्लगड्डा लक्ष्मी प्रसाद का योगदान

शेखर मिन्नल्ला हुस्सैन¹, प्रो. नल्ला सत्यनारायण²

¹शोधार्थी, हिंदी विभाग, आंध्र विश्वविद्यालय, विशाखपट्टणम, आंध्रप्रदेश.

²शोध निर्देशक, हिंदी विभागाध्यक्ष, आंध्र विश्वविद्यालय, विशाखपट्टणम, आंध्रप्रदेश.

शोध सारांश :

प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य आचार्य यार्लगड्डा लक्ष्मी प्रसाद के उस बहुआयामी योगदान का विश्लेषण करना है, जिसके माध्यम से उन्होंने भारतीय साहित्यों, विशेषतः हिंदी और तेलुगु साहित्य, के बीच सृजनात्मक, अनुवादात्मक, तुलनात्मक तथा सांस्कृतिक समन्वय को सुदृढ़ किया। आचार्य यार्लगड्डा लक्ष्मी प्रसाद केवल साहित्यकार नहीं थे, बल्कि वे शोधकर्ता, अध्यापक, समालोचक, अनुवादक, संगठनकर्ता, राजभाषा-सेवी और सांस्कृतिक सेतु-निर्माता भी थे। हिंदी और तेलुगु दोनों भाषाओं में पीएच.डी. प्राप्त कर उन्होंने भारतीय भाषाओं के अंतर्संबंधों को गंभीर अकादमिक आधार प्रदान किया। उनकी अनुवाद कृति 'तमस' और मौलिक कृति 'द्रौपदी' के लिए केंद्रीय साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त होना उनकी सृजनशीलता और समन्वय-दृष्टि का प्रमाण है। प्रस्तुत विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि यार्लगड्डा लक्ष्मी प्रसाद ने अनुवाद, तुलनात्मक अध्ययन, हिंदी-प्रचार, तेलुगु साहित्य के पुनर्पाठ, संस्थागत नेतृत्व तथा भारतीय भाषाई एकता के संवर्धन के माध्यम से राष्ट्रीय साहित्यिक चेतना को नई दिशा दी। वस्तुतः वे हिंदी और तेलुगु के बीच ही नहीं, बल्कि समूची भारतीय साहित्यिक परंपरा के बीच संवाद और पारस्परिक सम्मान के प्रबल वाहक थे।

मूल शब्द : भारतीय साहित्य, समन्वय, हिंदी, तेलुगु, अनुवाद, तुलनात्मक अध्ययन, सांस्कृतिक एकता, साहित्यिक संवाद, भाषायी सेतु।

आचार्य यार्लगड्डा लक्ष्मी प्रसाद भारतीय साहित्य के आकाश में एक ऐसा देदीप्यमान नक्षत्र हैं, जिन्होंने अपनी बहुआयामी प्रतिभा और अथक परिश्रम से हिंदी और तेलुगु साहित्यों के मध्य एक सुदृढ़ सेतु का निर्माण किया है। विद्यार्थी, शोधकर्ता, पर्यवेक्षक, अध्यापक, आचार्य, उपन्यासकार, जीवनीयाँ लिखने वाले लेखक, निबंधकार, समालोचक, अनुवादक, और प्रभावशाली वक्ता के रूप में उनकी भूमिकाएँ अद्वितीय रही हैं। पद्मश्री और पद्मभूषण से सम्मानित आचार्य लक्ष्मी प्रसाद को एक ऐसे साहित्यिक प्रतिमूर्ति के रूप में जाना जाता है, जिन्होंने भारतीय साहित्यों और संस्कृतियों के समन्वय में अभूतपूर्व और ऐतिहासिक योगदान दिया है। ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित डॉ. सी. नारायण रेड्डी ने उनके इसी योगदान को रेखांकित करते हुए उन्हें हिंदी और तेलुगु भाषाओं के समन्वय का "स्वर्णिम सेतु" कहा था।

आचार्य यार्लगड्डा लक्ष्मी प्रसाद का जन्म 24 नवम्बर 1953 को आंध्र प्रदेश के कृष्णा जिले के गुडीवाड़ा मंडल अंतर्गत बेतवोलु ग्राम में एक सुसंस्कृत, सादगीपूर्ण एवं पारंपरिक परिवार में हुआ था। उनके पिता श्री अंकिनीडु जी और माता श्रीमती रंगनायकम्मा जी दोनों ही शिक्षक थे, और शिक्षा उनके परिवार की परंपरा के साथ-साथ जीवन का मूल उद्देश्य भी थी। उनके माता-पिता ने दक्षिण भारत हिंदी सभा के माध्यम से आंध्र प्रदेश में हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण और सराहनीय कार्य किया था। उस समय दक्षिण भारत में हिंदी को आगे बढ़ाना आसान नहीं था, फिर भी उन्होंने पूरे समर्पण के साथ इस दायित्व का निर्वहन किया और विद्यार्थियों को प्राथमिक एवं माध्यमिक हिंदी परीक्षाओं के लिए विशेष प्रशिक्षण दिया। इसी भाषायी समन्वय के वातावरण में पले-बढ़े लक्ष्मी प्रसाद जी ने बाल्यकाल में ही दक्षिण भारत हिंदी सभा द्वारा आयोजित 'राज्य भाषा प्रवीण' परीक्षा में सफलता प्राप्त की। यह उनके जीवन की एक महत्वपूर्ण घटना थी, जिसने उनके मन में हिंदी भाषा के प्रति विशेष अनुराग और गहरा लगाव उत्पन्न किया, जो आगे चलकर उनके अनुवादक और साहित्यिक जीवन की मजबूत नींव बना।

आचार्य यार्लगड्डा लक्ष्मी प्रसाद का व्यक्तित्व असाधारण रूप से बहुआयामी था। वे एक विद्यार्थी, शोधकर्ता, अध्यापक, आचार्य, उपन्यासकार, जीवनीकार, निबंधकार, समालोचक, अनुवादक, प्रभावशाली वक्ता, अभिनेता, संपादक, हिन्दी व राजभाषा

संस्थाओं के अध्यक्ष, छात्र-नेता, राजनेता, संसदीय कार्यकर्ता और लोकसेवक के रूप में चित्रित किया गया है। यह बहुआयामिता केवल व्यक्तित्व की विविधता नहीं, बल्कि इस बात का संकेत है कि उन्होंने साहित्य को जीवन से अलग नहीं माना। वे साहित्य को समाज, राजनीति, संस्कृति और राष्ट्रीय चेतना से जोड़कर देखते थे। यही कारण है कि भारतीय साहित्यों के समन्वय में उनका योगदान केवल पुस्तकीय नहीं, बल्कि व्यापक सांस्कृतिक प्रक्रिया का अंग बन जाता है।

भारतीय साहित्य की असली ताकत उसकी अनेक भाषाओं में छिपी है। भारत की हर भाषा अपने आप में एक अलग संस्कृति, जीवंत इतिहास, लोक-जीवन और सुंदरता का खजाना समेटे हुए है। ऐसी स्थिति में, भारतीय साहित्यों के बीच समन्वय केवल भाषाओं के जुड़ने का मामला नहीं रह जाता; यह देश की सांस्कृतिक एकता, आपसी समझ और बौद्धिक विकास का मजबूत आधार बन जाता है। आचार्य यार्लगड्डा लक्ष्मी प्रसाद का पूरा जीवन इसी समन्वयवादी सोच का सबसे सशक्त उदाहरण है। वे केवल एक लेखक या शिक्षक नहीं थे, बल्कि वे हिंदी और तेलुगु के बीच एक ऐसा 'साहित्यिक पुल' थे, जिसने भारतीय भाषाओं को एक सूत्र में पिरोया। साहित्य को भाषाओं की कैद से निकालकर उन्होंने उसे एक साझा भारतीय चेतना का रूप दिया। हिंदी और तेलुगु दोनों में पीएच.डी. करने वाले इस दुर्लभ विद्वान ने अनुवाद, लेखन, आलोचना और संस्थाओं के संचालन जैसे कई मोर्चों पर अपना अतुलनीय योगदान दिया है। अपने इसी बहुआयामी व्यक्तित्व के कारण वे भारतीय साहित्य के इतिहास में एक बेहद प्रेरणादायक अध्याय के रूप में दर्ज हैं।

आचार्य यार्लगड्डा लक्ष्मी प्रसाद के भीतर साहित्यिक समन्वय की जो भावना दिखती है, उसकी जड़ें उनके बचपन और पारिवारिक संस्कारों में बहुत गहरी थीं। उनका जन्म एक ऐसे परिवार में हुआ जहाँ शिक्षा को केवल पैसे कमाने का जरिया नहीं, बल्कि जीवन का अहम हिस्सा माना जाता था। उनके घर में नानी और माता-पिता सभी शिक्षा के क्षेत्र से जुड़े थे और दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा के जरिए हिंदी के प्रचार में लगे हुए थे। उस दौर में दक्षिण भारत में हिंदी का प्रचार करना आसान नहीं था, लेकिन घर के इस माहौल ने लक्ष्मी प्रसाद जी के मन में हिंदी के लिए एक गहरा सम्मान और लगाव पैदा कर दिया। 'राष्ट्रभाषा प्रवीण' परीक्षा पास करने के बाद से हिंदी उनके बौद्धिक विकास की मुख्य भाषा बन गई। आगे चलकर उन्होंने अपनी पढ़ाई में हिंदी और तेलुगु दोनों को शामिल किया। 1985 में उन्होंने "हिंदी कविता को आंध्रों की देन" विषय पर अपनी पहली पीएच.डी. पूरी की, जिससे हिंदी साहित्य में आंध्र के योगदान को पहचान मिली। इसके बाद 1994 में उन्होंने "आलूरी बैरागी और गजानन माधव मुक्तिबोध की कविता : एक तुलनात्मक अध्ययन" पर अपनी दूसरी पीएच.डी. करके दोनों भाषाओं के बीच तुलनात्मक अध्ययन को एक नई दिशा दी। इस तरह, उनके शैक्षणिक जीवन की शुरुआत ही भारतीय भाषाओं को जोड़ने वाले एक मजबूत और समन्वयकारी विचार के साथ हुई।

भारतीय साहित्यों को जोड़ने में आचार्य लक्ष्मी प्रसाद का सबसे बड़ा योगदान उनके अनुवाद कार्य और दोनों भाषाओं के बीच एक मजबूत पुल बनाने में दिखता है। उनका पक्का विश्वास था कि जब तक तेलुगु समाज के इतिहास और संस्कृति को हिंदी में नहीं लाया जाएगा, तब तक हिंदी भाषी लोग तेलुगु समाज को सही अर्थों में नहीं समझ पाएंगे। इसी तरह, हिंदी की संस्कृति को तेलुगु तक पहुँचाना भी वे उतना ही जरूरी मानते थे। इसीलिए उन्होंने खुद तो कई अहम किताबों का अनुवाद किया ही, दूसरों को भी प्रेरित किया। उदाहरण के लिए, आचार्य वेलमल सिम्मन्न की किताब "तेलुगु भाषा चरित्र" का हिंदी अनुवाद उन्हीं की प्रेरणा से हुआ था। इससे पता चलता है कि अनुवाद उनके लिए कोई निजी उपलब्धि नहीं, बल्कि एक सांस्कृतिक जिम्मेदारी थी, जिसका उद्देश्य भारतीयता की साझी भावना को फैलाना था।

उन्होंने कई दूसरी भारतीय भाषाओं की बेहतरीन किताबों को भी तेलुगु पाठकों तक पहुँचाया। उनका मकसद सिर्फ भाषा बदलना नहीं, बल्कि उन भाषाओं के विचारों और संस्कारों को तेलुगु समाज से जोड़ना था। उन्होंने हरिवंश राय बच्चन की आत्मकथा के चारों हिस्सों का तेलुगु में अनुवाद किया, जिससे हिंदी के एक महान लेखक की कहानी तेलुगु लोगों तक पहुँची। "नदी का शोर" का अनुवाद और लोकसभा के भाषणों को तेलुगु में लाना यह दिखाता है कि वे साहित्य को बहुत व्यापक नजरिए से देखते थे। उनके लिए

आत्मकथा, भाषण और वैचारिक लेख सब कुछ भारतीय अनुभव का हिस्सा था। अनुवाद की यही गहरी समझ भारतीय साहित्य की एकता का असली आधार है।

आचार्य यार्लगड्डा लक्ष्मी प्रसाद का योगदान केवल अनुवाद तक सीमित नहीं था; उन्होंने मौलिक रचना, आलोचना और शोध के माध्यम से भी भारतीय साहित्यिक एकता की अवधारणा को समृद्ध किया। उनकी अनुवाद कृति “तमस” और मौलिक कृति “द्रौपदी” के लिए केंद्रीय साहित्य अकादमी पुरस्कार मिलना इस बात का साक्ष्य है कि वे एक साथ मौलिक सर्जक और समर्थ अनुवादक थे। एक ही व्यक्तित्व का अनुवाद और मौलिक सृजन दोनों क्षेत्रों में सर्वोच्च राष्ट्रीय सम्मान प्राप्त करना अत्यंत विरल उपलब्धि है। इसके अतिरिक्त, उनके द्वारा सत्तर से अधिक प्रामाणिक ग्रंथों की रचना का उल्लेख भी दस्तावेज़ में मिलता है। उन्होंने नेताओं, आंदोलनकारियों, साहित्यकारों और महापुरुषों के जीवन-इतिहास तथा आत्मकथाओं को विश्लेषणात्मक, शोधपरक, तुलनात्मक और आलोचनात्मक दृष्टि से प्रस्तुत किया। इस प्रकार उनका साहित्य केवल काव्यात्मक या रचनात्मक नहीं, बल्कि बौद्धिक संवाद का साहित्य था। उन्होंने जटिल विषयों को सरल और प्रभावशाली भाषा में प्रस्तुत किया, जिससे विभिन्न भाषिक पृष्ठभूमि वाले पाठक भारतीय समाज, राजनीति, संस्कृति और साहित्य को साझा दृष्टि से समझ सकें। यह कार्य भारतीय साहित्यों के समन्वय के लिए इसलिए महत्वपूर्ण है कि इससे क्षेत्रीय साहित्य राष्ट्रीय विमर्श का अंग बनता है और राष्ट्रीय साहित्य क्षेत्रीय अनुभवों से समृद्ध होता है।

उनकी अध्यापन-परंपरा और संस्थागत भूमिकाएँ भी साहित्यिक समन्वय के कार्य में अत्यंत महत्वपूर्ण थीं। काकानी वेंकटरत्नम कॉलेज, आंध्र लायोला कॉलेज और फिर आंध्र विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में उनकी दीर्घ सेवाओं ने हिंदी अध्ययन को दक्षिण भारतीय संदर्भ में गंभीरता प्रदान की। दस्तावेज़ में स्पष्ट है कि उनके पर्यवेक्षण में अनेक एम.फिल. और पीएच.डी. शोधार्थियों ने हिंदी साहित्य में महत्वपूर्ण शोध किए। एक अध्यापक के रूप में उनका प्रभाव “अनुकरणीय” और शोधकर्ता के रूप में “अवर्णनीय” कहा गया है। इस तथ्य का भारतीय साहित्यों के समन्वय से गहरा संबंध है, क्योंकि किसी भी भाषिक-सांस्कृतिक आंदोलन को स्थायित्व संस्थाओं, अध्यापन और शोध के माध्यम से ही मिलता है। आचार्य लक्ष्मी प्रसाद ने केवल अपने लेखन से नहीं, बल्कि विद्यार्थियों, शोधार्थियों और सहकर्मी विद्वानों के माध्यम से एक बड़ी साहित्यिक परंपरा का निर्माण किया। हिंदी विभाग में उनकी भूमिका दक्षिण भारत में हिंदी के शैक्षणिक विस्तार की दृष्टि से महत्वपूर्ण रही, जबकि तेलुगु और हिंदी दोनों पर उनकी पकड़ ने उन्हें तुलनात्मक और अंतरभाषिक अध्ययन का आदर्श मार्गदर्शक बनाया। इस प्रकार वे व्यक्ति से संस्था और संस्था से परंपरा तक फैलने वाले साहित्यिक समन्वय के वाहक सिद्ध होते हैं।

आचार्य यार्लगड्डा लक्ष्मी प्रसाद ने विभिन्न साहित्यिक, भाषायी और सांस्कृतिक संस्थाओं में सक्रिय भूमिका निभाकर भारतीय भाषाओं के बीच संवाद को संगठनात्मक शक्ति भी प्रदान की। वे आंध्र प्रदेश अधिकारी भाषा संघ के अध्यक्ष रहे, आंध्र प्रदेश हिंदी अकादमी के अध्यक्ष रहे, कनाडा स्थित विश्व हिंदी संस्थान में चीफ पेट्रन के रूप में कार्य किया, केंद्रीय हिंदी समिति तथा विश्व हिंदी सम्मेलन से जुड़े, और बाद में विश्व हिंदी परिषद के राष्ट्रीय अध्यक्ष के रूप में भी सक्रिय रहे। इन पदों पर रहते हुए उन्होंने सम्मेलनों, कार्यशालाओं और सांस्कृतिक कार्यक्रमों के माध्यम से भाषा और साहित्य के प्रचार-प्रसार को संस्थागत रूप दिया। यह कार्य विशेष रूप से इसलिए उल्लेखनीय है कि साहित्यिक समन्वय केवल पुस्तकों से नहीं बनता; उसके लिए मंच, विमर्श, लेखक-समुदाय, पाठक-वर्ग और सांस्कृतिक संवाद की निरंतरता आवश्यक होती है। दस्तावेज़ यह भी बताता है कि वे प्रथम, द्वितीय और विश्व तेलुगु लेखकों की महासभाओं के आयोजक अध्यक्ष रहे और तेलुगु भाषा को प्राचीन भाषा का दर्जा दिलाने की प्रक्रिया से भी जुड़े। इससे स्पष्ट है कि वे केवल हिंदी के प्रचारक नहीं थे, बल्कि भारतीय भाषाओं की गरिमा के समर्थक थे। उनके लिए समन्वय का अर्थ किसी एक भाषा का वर्चस्व नहीं, बल्कि सभी भाषाओं का सम्मानजनक संवाद था।

उनकी राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय यात्राएँ भी भारतीय साहित्यों के समन्वय में सहायक सिद्ध हुईं। दस्तावेज़ में वर्णित है कि उन्होंने अमेरिका, कनाडा, इंग्लैंड, रूस, फ्रांस, सिंगापुर, मलेशिया, बेल्जियम, थाईलैंड, यूक्रेन, पाकिस्तान, मिस्र और दक्षिण अफ्रीका आदि देशों की यात्राएँ केवल पर्यटन के लिए नहीं, बल्कि भाषा, साहित्य और अंतरराष्ट्रीय साहित्यिक समन्वय के उद्देश्य से कीं। उन्होंने अनेक अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों में भाग लिया और शोधपत्र प्रस्तुत किए। इससे भारतीय साहित्य की बहुभाषिक चेतना को

अंतरराष्ट्रीय मंच मिला। भारतीय भाषाओं का आपसी समन्वय जब विश्व पटल पर प्रस्तुत होता है, तब वह भारतीय संस्कृति की व्यापकता और जीवंतता का परिचायक बनता है। आचार्य लक्ष्मी प्रसाद की यात्राओं ने उन्हें व्यापक विश्व-दृष्टि दी और भारतीय भाषाओं के प्रश्न को सीमित प्रादेशिकता से निकालकर वैश्विक सांस्कृतिक विमर्श से जोड़ा। इस दृष्टि से उनका योगदान भारतीय साहित्य को विश्व-संवाद में प्रतिष्ठित करने का भी योगदान है। वे भारतीय साहित्य को केवल हिंदी या तेलुगु तक सीमित न रखकर विश्व के समक्ष एक बहुभाषिक सांस्कृतिक सत्ता के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

उनके साहित्यिक समन्वय का एक अत्यंत प्रेरक पक्ष यह है कि वे भाषा, साहित्य, समाज और राजनीति को अलग-अलग खंडों में नहीं देखते थे। राज्यसभा सदस्य के रूप में उन्होंने तमिलनाडु में दशकों से चल रहे तेलुगु बी.ए. पाठ्यक्रम को हटाए जाने के निर्णय का विरोध किया और हस्तक्षेप कर उसे बनाए रखने की व्यवस्था करवाई। यह घटना बताती है कि उनके लिए भाषा-सुरक्षा, शिक्षा और सांस्कृतिक अधिकार एक-दूसरे से जुड़े हुए थे। उन्होंने सांसद निधि का उपयोग सामाजिक और शैक्षणिक संस्थाओं के विकास में किया, अनेक शिक्षण संस्थानों को आर्थिक सहायता दी, और जन प्रशिक्षण संस्थान जैसे उपक्रमों के माध्यम से युवाओं को प्रशिक्षित किया। पहली दृष्टि में यह कार्य साहित्यिक प्रतीत नहीं होते, पर वास्तव में यही वे सामाजिक आधार हैं जिन पर भाषा और साहित्य जीवित रहते हैं। किसी भाषा की शिक्षा, उसकी संस्थाएँ, उसके पाठ्यक्रम, उसके पाठक और उसकी सांस्कृतिक प्रतिष्ठा—ये सब साहित्यिक समन्वय की आवश्यक शर्तें हैं। इस अर्थ में आचार्य यार्लगड्डा लक्ष्मी प्रसाद का योगदान केवल लेखक का योगदान नहीं, बल्कि भाषा-समाज के निर्माता का योगदान है।

अंततः, भारतीय साहित्यों के समन्वय में आचार्य यार्लगड्डा लक्ष्मी प्रसाद का योगदान बहुस्तरीय, जीवंत और ऐतिहासिक महत्त्व का है। उन्होंने अपने पारिवारिक संस्कारों से हिंदी-प्रेम पाया, अपनी शिक्षा से तुलनात्मक दृष्टि अर्जित की, शोध से हिंदी और तेलुगु संबंधों को बौद्धिक आधार दिया, अनुवाद से भाषाओं के बीच सांस्कृतिक सेतु बनाए, मौलिक लेखन से भारतीय साहित्य को समृद्ध किया, अध्यापन से नई पीढ़ी तैयार की, संस्थाओं के माध्यम से भाषिक संवाद को संगठित किया, और राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय मंचों पर भारतीय भाषाओं की गरिमा को प्रतिष्ठित किया। यही कारण है कि ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित डॉ. सी. नारायण रेड्डी ने उन्हें हिंदी और तेलुगु के बीच “स्वर्णिम सेतु” कहा। यह उपमा केवल प्रशंसा नहीं, बल्कि उनके संपूर्ण साहित्यिक जीवन का सबसे सटीक मूल्यांकन है। वस्तुतः आचार्य यार्लगड्डा लक्ष्मी प्रसाद ने यह सिद्ध किया कि भारतीय साहित्य की असली शक्ति विविधता में निहित है, और उस विविधता को एक दूसरे से जोड़ने वाला सबसे विश्वसनीय माध्यम संवेदनशील अध्ययन, तुलनात्मक दृष्टि, उदार अनुवाद-चेतना और सांस्कृतिक समर्पण है। इसलिए उनका योगदान केवल हिंदी और तेलुगु के बीच सेतु-निर्माण तक सीमित नहीं है; वह भारतीय साहित्यों की साझा आत्मा को प्रतिष्ठित करने वाला योगदान है, जिसे भारतीय सांस्कृतिक एकता के संदर्भ में लंबे समय तक स्मरण किया जाएगा।

सहायक ग्रंथ :

1. *हिंदी कविता को अन्ध्रों की देन* (1985, 2009), आचार्य यार्लगड्डा लक्ष्मीप्रसाद ।
2. *हिंदी साहित्य चरित्रा*, आचार्य यार्लगड्डा लक्ष्मीप्रसाद ।
3. *द्रौपदी*, आचार्य यार्लगड्डा लक्ष्मीप्रसाद, 2006.
4. *हिंदी उपन्यास 'तमस'* (1992) का तेलुगु अनुवाद, आचार्य यार्लगड्डा लक्ष्मीप्रसाद ।
5. *दक्षिण अफ्रीका में महात्मोदय*, आचार्य यार्लगड्डा लक्ष्मीप्रसाद, 2016 ।
6. *पुच्छलपल्ली सुन्दरय्या*, आचार्य यार्लगड्डा लक्ष्मीप्रसाद, 2008 ।
7. *त्रिपुरानेनी के दो पौराणिक नाटक* (अनुवाद पुस्तक), (मूल पुस्तक: खूनी और शम्बूक वध), आचार्य यार्लगड्डा लक्ष्मीप्रसाद, 1988 ।
8. *आंध्र प्रदेश में हिंदी प्रचार आन्दोलन का इतिहास*, सं. आचार्य यार्लगड्डा लक्ष्मीप्रसाद, 2011।
9. *आंध्र प्रदेश में हिंदी साहित्य विकास का इतिहास* (2011) सं. आचार्य यार्लगड्डा लक्ष्मीप्रसाद।